International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 07 Issue 10 Ver. III || October 2018 || PP 68-73

समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण विमर्श

Dr. Biva Kumari
Associate Professor
Department of Hindi
University of Kalyani
Kalyani, Nadia

सारांश-
पर्यावरण का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। शुद्ध हवा, पानी, रहने के लिए भूमि सब कुछ हमें पर्यावरण से मिलता है। मनुष्य विज्ञान और विकास के नाम पर प्रकृति का लगातार विनाश करता जा रहा है। प्रकृति का अमर्यादित उपभोग, वनों की कटाई, उद्योग-धंधों की भरमार, उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन, व्यापार, बाजार और इसी प्रकार का एक परिवेश बनता जा रहा है जो प्रकृति, पर्यावरण, पृथ्वी और मानव-जाति के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण को बचाने की चिंता प्रमुख है। समकालीन कविता प्रकृति के मोहक रूपों का चित्रण करने के साथ-साथ प्रकृति के विनाश के कारणों की भी पड़ताल करती है।

मुख्य शब्द-
पर्यावरण, प्रकृति, ग्रीन हाउस गैस, ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण, उत्सर्जन, विकसित और विकासशील देश, भूमंडलीकरण।

I. प्रस्तावना-

पर्यावरण शब्द और उसका अर्थ अत्यंतव्यापक है, जिसमें सारा ब्रह्मांड ही समा जाता है। 'परि' अर्थात हमारे चारों ओर का, आवरण अर्थात ढँकना ही पर्यावरण है। हम सभी और हमारा यह संसार-आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि (सूर्य) तथा वन, वृक्ष, नदी, पहाड़, समुद्र एवं पशु-पक्षी आदि से आवृत्त है। इन तत्वों एवं पदार्थों का समग्र रूप ही पर्यावरण है। दूसरे शब्दों में कहें तो धरती पर हम जिस किसी चीज़ को देखते और महसूस करते हैं, वह पर्यावरण का हिस्सा है। इसी में सब पैदा होते हैं, जीवित रहते हैं, सांस लेते हैं, फलते-फूलते हैं और समस्त क्रियाकलाप करते हैं। अत: अपने और समस्त समाज के लिए पर्यावरण का संरक्षण व पोषण नितांत आवश्यक है।

II. अध्ययन का उद्देश्य-

इस लेख को पढ़कर हम समझ सकेंगे कि पर्यावरण का मानव-जीवन में कितना महत्व है। प्रकृति के बिना मानव-जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पाठकों को पर्यावरण के प्रति सजग, सचेत और जागरूक बनाया जा सकता है।

III. विषय-विस्तार-

साहित्य सदैव सांझासंस्कृति पर जो देता रहा है। प्रश्न यह है कि क्यावैश्वीकरण के दौर को हम सांझा संस्कृति का दौर मान सकते हैं,जहॉ विकसित देशों की आर्थिकी एक विशेष प्रकार की संस्कृति का रूप ले चुकी है और यह संवेदनहीन, क्रूर संस्कृति है जो हमें ही नहीं, हमारे वायुमंडल को जीवन नाशक बना रही है। इसके लिए वे लोग जिम्मेदार हैं जो भूमंडलीकरण के प्रस्तोता हैं। ग्लोबल वार्मिंग के लिए ये विकसित देश अधिकाधिक जिम्मेदार हैं, इन्होंने वायुमंडल को 'ग्रीन हाउस गैस' से भर दिया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देशों की क्षमता, भूमि साधनों का शोषण तो किया ही है, उसने संसार की नदियों को कारखाने के मल से जहरीला बना दिया है और हमारे वायुमंडल को भॉति-भॉति के उत्सर्जन से प्रदूषित कर दिया है। विकास के इस अंधी दौड़ में आज विकासशील देश भी शामिल हो गया है। कुमार अंबुज 'कहीं कोई जमीन नहीं' कविता में लिखते हैं- ''चारों तरफ़ से नवनिर्माण की आवाजें/और निर्माण केवल बिल्डर कर रहे हैं/बाकी लोग सिर्फ बेच रहे

हैं अपनी ज़मीनें/xxxxx/ अब सारी जमीन बिल्डरों के पास है/ सारी तरकीबें, अध्यात्म और दर्शन बिल्डरों के पास/xxxxx/पृथ्वीबिल्डर की डायनिंगटेबल पर रखा एक अधखाया फल।''[1] पहले जहॉ खेत, वन, जंगल था, वहां आज बड़ी-बड़ी मल्टी-स्टोरीडबिल्डिंग एवं कल-कारखाने स्थापित हो गये हैं। लीलाधरमंडलोई की एक कविता है-''अगर न माने'। इसमें वे लिखते हैं- ''यहॉ एक गॉव था अपना/यहां कुछ गांव थे प्यारे/ मीठे दिन थे मीठी रातें/ रस की बूंदें, रस के धारे/ इस धरती पे भी कल तक/जंगल थे और नदियां थी/ जगमग-जगमग झरने थे/ महुआ आम आदि थे/ खुशियॉ थीं/ पके हुए खेतों को हंसते/देख, यहां खुशहाली थी/ उस दुश्मन की आंख लगी कि/ तहस-नहस सब धीरे-धीरे/लोहा, ईंट, सीमेंट के आगे/ नदी बंध गई उजडे गांव।''[2]मनुष्य विज्ञान और विकास के नाम पर प्रकृति का लगातार विनाश करता जा रहा है। प्रकृति का अमर्यादित उपभोग, वनों की कटाई, उद्योग-धंधों की भरमार, उपभोक्तावस्तुओं का उत्पादन, व्यापार, बाजार और इसी प्रकार का एक परिवेश बनता जा रहा है, जो प्रकृति, पर्यावरण, पृथ्वी और मानव जाति के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। पर्यावरण का हमारे जीवन में अत्यंत महत्व है। शुद्ध हवा, पानी, रहने के लिए भूमि और भोजन सब कुछ हमें पर्यावरण से मिलता है। सभी प्राकृतिक संसाधन इसी पर्यावरण में पाये जाते हैं। जनसंख्या बढ़ने से लोगों की आवश्यकता भी बढ़ी है और इसी आवश्यकता को पूरी करने के लिए लगातार प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन हो रहा है। जिससे पर्यावरण का तेजी से ह्रास हो रहा है। भूमि अपरदन, मरूस्थलीकरण, वनोन्मूलन, वर्षा में कमी और उपलब्ध कृषि-भूमि में कमी आदि सामान्य समस्याएं हैं। जंगलों की कटाई से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। वातावरण में कार्बन डार्ड ऑक्साइड की वृद्धि, ऑक्सीजन की कमी, वर्षा में कमी और भूमिगत जल में कमी जैसी समस्याएंवनोन्मूलन के कारण उत्पन्न हो रही हैं। जंगलों की कटाई से जंतुओं एवं पौधों की कई जातियां विलुप्त होने के कगार पर है। लीलाधर मंडलोई 'न के बराबर' कविता में लिखते हैं- ''हमारे बुजुर्ग जानते थे/कितना जरूरी है/गौरेय्या का होना//xxxxx/ वे घोंसले बनाती थीं वहां/ कि ध्वनि, शोर, तरंगों से/ सुरक्षित थी उनकी जिंदगी//xxxxx/ वे उड़ गई हैं या/ खो गई कहीं हवाओं में/ कहना मुश्किल/ बस कभी-कभी/आती है उनकी भयभीत आवाज जब/हम याद करते हैं उन्हें।''[3]पृथ्वी का सौंदर्य प्राकृतिक हरियाली है जो शीघ्रता से नष्ट हो रही है। आज पृथ्वी की स्थिति क्या हो गई है, इसका चित्रण करते हुए एकांत श्रीवास्तव 'दुःस्वप्न में पृथ्वी' कविता में लिखते हैं- ''सूखी हुई लहरें थीं रेत में/ शंख, सीपी और घोंघे थे/ एक पूरा समुद्र था सूखा हुआ/ मगर पानी कहीं नहीं था/ पेड़ थे मगर उनके पत्ते/ बरसों पहले टूट चके थे/सूखी टहनियों पर सूने घोंसले थे/और परिंदे कहीं नहीं थे।''4 इस तरह से पर्यावरण का ह्रास होते रहने से हमारे सारे प्राकृतिक संसाधन समाप्त होते जायेंगे और प्रकृति में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन से अनेक जलवायु संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। हमारी जलवायु में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भूकंप, भूस्खलन, बाढ, सूखा, चक्रवात की आवृत्तिबढ गई है। इसीलिए तो लीलाधरमंडलोई कहते हैं- ''मौसम बदलता है कभी-कभी अपने तेवर/वह हंसता है आदिमहँसी/ करता आतंकित समूचा परिवेश।''[4] जहां मौसम अपने तेवर दिखाता है वहीं बाढ़ और सूखे का संकट उत्पन्न हो जाता है, एकांत श्रीवास्तव लिखते हैं- ''हॉ, बेटा, गॉव की नदी में/पानी नहीं है/सूख गये हैं कुएं और पोखर/ऐसा यह अकाल/धूप है/आग बरसती हुई/xxxxxx/ तब इतनी परती नहीं थीं जमीन/ यहाँ उगता था/दूबराज, जयफूल/विष्णुभोग और नागकेसर/हरे खेतों में अलग से/दिखता था/नागकेसर का खेत/xxxxxx/ तब पड़ता नहीं था/ ऐसा अकाल, ऐसा सूखा/ गहरे कुण्ड सरीखे थे/ गांव के कुंए/ कभी सूखता नहीं था जल।''[5] पहले नदी सूखती नहीं थी क्योंकि पर्यावरण में संतुलन बना हुआ था। सारी सभ्यताओं का विकास एवं बड़े-बड़े शहरों का निर्माण नदी-तट पर ही हुआ है। नदियों का सूखना अर्थात हमारी सुख, समृद्धि, सपनों का सूखना भी है। तभी तो श्रीप्रकाशशुक्ल 'सूखती नदी' कविता में कहते हैं- ''नदी जब सूखने लगती है/तब बहुत कुछ सूख जाता है/अलहदा ! / आहिस्ता-आहिस्ता बंद होने लगती हैं/घंटे और घड़ियालों की आवाजें/भाप बनकर उड़ने लगते हैं सपने/सुबह की उम्मीद के साथ/ढहने लगता है जीवन/शिशिर फेंकने लगता है लपटें/बसंत तपिश से कुलबुलाता है/ और ग्रीष्म जैसे अपने ही आंच में झुलसने लगता है/xxxxxx/ नदी जब सूखने लगती है/बहते शहर को कोई नहीं बचा सकता/ शहर तभी तक आजाद है/जब तक बह रही है/एक नदी।''[6] औद्योगीकरण के अंधाधुंध विकास सेभूमंडलीय ताप अति शीघ्रता से बढ़ रहा है। ग्लेशियर की बर्फ पिघल रही है और समुद्र तल बढ़ रहा है जिससे विश्व के तटीय इलाकों का बहुत बड़ा भाग भविष्य में समुद्र में डूब जायेगा । इसलिए श्रीप्रकाशशुक्ल कहते हैं- ''मत करो शहर को कैद नदियों में/ नदियां जिस दिन शहर को कैद कर लेंगी/

शहर कैद होगा कचरे में/कचरा होने तक/नदियां भी कभी-कभी विद्रोह करती हैं/ वे धार ही नहीं धूल भी देती है/और जब ऐसा करती हैं/श्मशान होती हैं।''[7]

महानगरों में अम्ल वर्षा से पौधों, जंतुओं और मनुष्यों को नुकसान हो रहा है। अम्ल वर्षा से हमारे ऐतिहासिक धरोहरों को बहुत नुकसान पहुंचा है।ताजमहल का सफ़ेद संगमरमर अम्लवर्षा से पीला पड़ गया है। धुएं और धूल से लोगों को श्वास संबंधी बीमारियां हो रही हैं। ओजोन परत के पतली होने से पराबैंगनी किरणेंपृथ्वी पर पहुंचकर मनुष्य और जंतुओं के स्वास्थ्य पर असर डाल रही है।

वायु-प्रदूषण की तरह जल-प्रदूषण भी आज चिंता का विषय है। कल-कारखानों से उत्सर्जित होने वाला रासायनिक पदार्थ तथा शहरों के कचरे नदियों के जल में प्रवाहित कर दिया जाता है, जिससे जल भी प्रदूषित हो गया है। धवल हिम से आच्छादित हिमालय से निकली श्वेत गंगधारा पृथ्वी पर पहुंचकर क्या से क्या हो जाती है, इसका चित्रण समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में बखूबी किया है। गंगा मात्र नदी नहीं है, एक संस्कार है जो भारतीय जन को भीतर तक भिगो जाता है। ज्ञानेन्द्रपति का एक काव्य संकलन है 'गंगातट'। इस संकलन में गंगा से संबंधित बहुत सी कविताएं हैं। इस संकलन की पहली कविता है-'गंगा-स्नान'। इस कविता में एक बूढ़ी मां अपने बेटे और बहू का हाथ थामे गंगा स्नान के लिए आई है। कूंथली कहती, वृद्धावस्था के कारण दोहरी होती, फिर भी गंगा-घाट की सीढ़ियां उतरती जल के तल तक पहुंचती हैं। मौत के दरवाजे पर खड़ी डगमग पांव वाली वह बूढ़ी मां गंगास्नान से केवल शरीर को ही पवित्र नहीं कर रही है, अपने प्राणों तक को शरीर के पोर-पोर से प्रक्षालित कर रही है । इस उत्तर-आधुनिक युग में हम उस बूढ़ी मां के भावावेग को नहीं समझ सकते। हमारे मन में किसी भी नदी के प्रति पवित्र भाव बचा ही नहीं है। उत्तर आधुनिक युग में हम इतने भौतिकवादी, अर्थवादी हो गये हैं कि हमारे जेबें या तो बचत-खातों की पास बुकों से भरी हैं, या तमगों से सजी हैं। हमारी जेबें जरूर भरी हैं पर हमारा हृदय रिक्त हो गया है। आज नदी का मतलब हो गया है-''नदी मतलब फिल्टर/नदी मतलब रंग-बिरंगेवाटर-प्यूरिफायर और मिनरलवाटर/नदी मतलब अरबों रुपयों की सरकारी परियोजनाएं/नदी मतलब सेमिनार/नदी मतलब एन.जी.ओ./नदी मतलब पुस्तिका/नदी मतलब विमोचन/नदी मतलब बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लपलपाती जिह्वा/नदी मतलब वर्ल्ड-बैंक/ नदी मतलब फोर्ड फाउंडेशन।''[8] उत्तर आधुनिकतावादी सोच के कारण पवित्र संस्कारों वाली गंगा का स्रोत पीछे सरकता हुआ सूख गया है।

आज गंगा का जल पवित्र न रहकर प्रदूषित हो गया है। यह गंगा-जल न तो किसी की प्यास बुझाने में सक्षम है और न ही इसे देखकर हमारे मन में श्रद्धा का भाव ही उत्पन्न होता है। कृष्णमोहनझा अपनी कविता 'नदी मतलब शोक-गीत' में लिखते है- ''अब नदी का मतलब होता है/नगरों-महानगरों का कचरा ढोने वाला बहुत बड़ा नाला/ अब नदी का मतलब होता है/स्याह बदबूदार लसलसाते पानी का मरियल प्रवाह।''9

ज्ञानेन्द्रपति की गंगा-प्रदूषण से संबंधित दो महत्त्वपूर्ण कविताएं हैं-'नदी और साबुन (एक)' तथा 'नदी और साबुन (दो)'। पहली कविता में कवि नदी को संबोधित करते हुए पूछता है- ''नदी/तू इतनी दुबलीक्यों है।''10 कवि को नदी मैली-कुचैली दिखाई पड़ रही है और नदी के इस गंदे जल में मरी हुई मछलियां सतह पर उतरा रही है। नदी बड़ी गहरी है पर उसकी धारा सिमट गई है, उसका दुग्ध-धवल जल मैला-कुचैला लग रहा है, गोता लगाने और जल-क्रीड़ा करने वाली मछलियां मर गई है, सतह पर उतरा रही हैं। क्यों ऐसा हुआ? कौन हैं वे जिन्होंने नदी के जल का हरण कर लिया है और नदी दुबली हो गई है? कौन हैं वे जिन्होंने नदी के कल-कल करते स्वच्छ जल में कलुष भरा जहर घोल दिया है कि मछलियां मर गई हैं। जबकि गंगा के गहरे जल में हाथी नहाते हैं, जल-क्रीड़ा करते हैं, बाघ उसे जूठा करता है, कछुए अपनी पीठों से उसे उलीचते हैं पर न तो गंगा गंदी हुई और न उसका पानी कम हुआ, बल्कि लगता तो ऐसा है कि हाथियों की जल-क्रीड़ा को गंगा आनन्दपूर्वक सहती थी- ''किसने तुम्हारा नीर हरा/कलकल में कलुष भरा/ बाघों के जुठराने से तो/कभी दूषित नहीं हुआ तुम्हारा जल/न कछुओं की दृढ़ पीठों से उलीचा जाकर भी कम हुआ/हाथियों की जल-क्रीड़ा को भी तुम सहती रही सानन्द।''11 गंगा को विषैला करने वाले जलजीव नहीं हैं और दूसरे जीव भी नहीं हैं, उसे गंदला और विषैला करने वालाहै मनुष्य, उसकी महत्त्वाकांक्षा के प्रतीक दीर्घकाय कारखाना जिसे अत्यधिक पानी को आवश्यकता होती है। ये कारखानें और कारखानों के मालिक सिर्फ अपना स्वार्थ देखते हैं। कारखानों से निष्काषित होने वाले रासायनिक पदार्थ को ज्ञानेन्द्रपति ने 'तेजाबी पेशाब' कहा है। इस 'तेजाबी पेशाब' ने शुभ्र गंगा को नीला कर दिया है। जिस तरह जहर चढ़ने से

व्यक्ति का शरीर नीला पड़ जाता है, उसी प्रकार गंगा की श्वेत जलधारा उद्योगों के विष से नीली पड़ गई है- "आह ! लेकिन/स्वार्थी कारखानों को तेजाबी पेशाब झेलते/बैंगानी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा।"12

ज्ञानेन्द्रपति की दूसरी कविता है-'नदी और साबुन (दो)'। कवि कहते हैं कि यह कैसीविडम्बना है कि जो साबुन कपड़ों के मैल को दूर करता है वही गंगा के जल को प्रदूषित करता है। यह साबुन की बट्टी साबुत है, इसका रैपर हटा दिया गया है। यह जल में डूबी घाट की सीढ़ी से ऊपर सूखी सीढ़ी पर रखी है, रंग इसका नीला है । इस साबुन की बट्टी को एक बहुराष्ट्रीय कंपनी ने बनाया है, इसके लिए बहुत प्रचार भी किया है। कवि कहते हैं कि यह कैसी विचित्र माया है कि हथेली भर के साबुन की चौकोर काया की इतनी लंबी छाया है अर्थात् वह साबुन की टिकिया इतनी दूर तक अपना प्रभाव छोड़े हुए है- "माया है कि तरहथ भर की उसकी चौकोर निश्चल/काया की बहुत लंबी छाया है।"[13] गंगा के सिरहाने है हिमालय-शुभ्रता और उज्ज्वलता का प्रतिमान। उस शुभ्रता से निःसृत गंगा को एक हथेली भर की टिकिया ने नीला कर दिया। शुभ्रता धरी रह गई, विषैला नीलापन प्रमुख हो गया। इस साबुन का निर्माता भी मनुष्य है और साबुन से कपड़े धोने वाला भी, उद्योग लगाने वाला भी और उद्योगों का निस्सरण जल में छोड़ने वाला भी मनुष्य है, तो गंगा को प्रदूषित करने वाला भी मनुष्य ही हुआ। गंगा के प्रति कवि की यह चिंता प्रकारांतर से मनुष्य के लिए की गई चिंता है। अंततः गंगा का जल मनुष्य के लिए ही तो है। गंगा का जल केवल जीवों के प्यास को ही नहीं बुझाती, भीतर की गहरी 'संस्कारों की प्यास' को भी तृप्त करती है। निर्मला पुतुल 'बूढ़ी पृथ्वी का दुख' कविता में लिखती हैं- "इस घाट अपने कपड़े और मवेशियां धोते/सोचा है कभी कि उस घाट/पी रहा होगा कोई प्यासा पानी/या कोई स्त्री चढ़ा रही होगी किसी देवता को अर्घ्य ।"[14]

अरूण कमल की एक कविता है-'गंगा को प्यार'। गंगा में प्यास बुझाने के लिए पक्षी आते ही हैं। वे गंगा के जल की सतह को अपने वक्ष से स्पर्श करते हैं परंतु पानी में चोंच नहीं डालते और घूम जाते हैं, क्यों? गंगा का पानी उन्हें पीने लायक नहीं लगता। अर्थात् गंगा का प्रदूषण इतना मुखर है कि उसे जानने के लिए गंगा के पानी को छूने या पीने की जरूरत नहीं है, सिर्फ देखने से ही उसकी प्रतीति हो जाती है। गंगा का प्रदूषण जैसे मुंह बोलता है। इसी कविता में एक और प्रसंग है कि एक गाय रुक-रुककर, संभल-संभलकर पैर रखती है, जल पीने के लिए गंगा की धार तक उतरती है। उसकी सांस से गंगा पानी हिल जाता है। शायद इसीलिए कि गंगा अपने पानी को हिलाकर उस गाय को निषेध कर रही है कि वह पानी न पिये। यह सब देखकर कवि आश्चर्यचकित हो सोचता है कि क्या गंगा इतनी प्रदूषित हो सकती है- "कभी-कभी कोई पक्षी/ जल की सतह को लगभग/ छाती से छूता निःशब्द/ मुडता है वापस,/ कोई गाय, संभलकर/ पांव टिकाती/ उतरी जल पीने/ और नथुनों के नीचे/ हिल गई गंगा ! / असंभव/ असंभव है सोचना-/जिनकी मिट्टी हवा-पानी से गुंथी है/ उनके लिए असंभव है सोचना कि एक दिन/ गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी/ विष की धाह से झुलस जायेगा।"[15] गंगा में यह प्रदूषण मनुष्य द्वारा फैलाया गया है। ऐसा करते हुए उन्होंने इसके परिणाम के बारे में नहीं सोचा।

बढ़ते प्रदूषण को ध्यान में रखकर स्वीडन के स्टॉकहोम शहर में 5 जून, 1972 को मानव पर्यावरण सम्मेलन हुआ था। यह सम्मेलनसंयुक्तराष्ट्र संघ द्वारा आयोजित किया गया था। इसका विषय मानव पर्यावरण संरक्षण था। इस सम्मेलन में 119 देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में पर्यावरण संबंधित 26 सिद्धांत और 4 प्रस्तावस्वीकारकिये गये। ये सभी सिद्धांत पर्यावरण शिक्षा, सुरक्षा और संरक्षण से संबंधित है। इसी सम्मेलन के बाद से प्रतिवर्ष 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

आज वर्ष 2018 है। सम्मेलन को हुए 45 वर्ष हो गये पर क्या हमने इतने वर्षों से सही अर्थों में पर्यावरण को नियंत्रित करने का प्रयास किया है। सिद्धांत बनाने और प्रस्ताव पास करने मात्र से पर्यावरण संरक्षण संभव नहीं। इसके लिए बहुत जरूरी है कि मनुष्यका मन, बुद्धि और आत्मा भी शुद्ध हो। साथ ही, जागरूकता और सही दिशा में किये गये सही प्रयास की आवश्यकता है। विकसित देशों को अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर इस विषय पर सोचना होगा एवं अपने लोभ पर संयम रखना होगा तथा विकासशील देशों को भी विवेक से काम लेना होगा। पर्यावरण सचेतनता और शिक्षा हर स्तर के व्यक्ति के लिए अनिवार्य बनाना होगा। पर्यावरण है तो समृद्धि है, सुख-शांति है, सपने हैं, विकास-परियोजनाएं हैं और हम हैं। अगर हम अब भी नहीं चेते और इसी तरह प्रकृति का दोहन करते रहें तो भावी पीढ़ी के लिए कुछ भी नहीं बचेगा और न ही वे बच पायेंगे जिनके लिए हम इतना कुछ कर रहे हैं। क्या हम भावी पीढ़ी के लिए विरासत में केवल प्रदूषण, दुःख, पीड़ा, यंत्रणा, बीमारी, भूख छोड़ जायेंगे। इस विषय पर अभी से विचार करने की आवश्यकता है। इतना देर न हो जाए कि हमारे

करने को कुछ भी न बचे। एकांत श्रीवास्तव 'विरासत' कविता में लिखते हैं- ''डूबते हुए सूर्य का आखिरी बयान/ या खत्म होती सभ्यता की अभिशप्त परछाइयां/क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर/ क्या छोड़ जाऊँगा।/मुझे मिले विरासत में सूरज और चांद/मुझे मिली ऋतुओं की/हरी-भरी डालियां/मुझे मिली नदियां गहरी और निर्मल/मुझे मिले ऋतुओं के सुंदरतम फूल/सूरज और चांद को लग गया ग्रहण/डालियों में धंस गये विष बुझे तीर/नदियों में धुल गया हत्याओं का लहू/फूलों पर बैठ गई बारूद की गंध/क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर/ क्या छोड़ जाऊँगा।/ मुझे मिलीं खेतों में पकी हुई फसलें/मुझे मिला कोठार में भरा हुआ अन्न/मुझे मिली नभ में सप्तर्षियों की झिलमिल/मुझे मिले रास्ते अनंत यात्राओं के/पकी हुई फसलों में लग गई आग/कोठार के अन्न को खा गये चूहे/सप्तर्षियों की झिलमिल को/डस गई घटाएं/रास्तों में फैल गये लुटेरे-बटमार/क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर/क्या छोड़ जाऊँगा।''[16]

IV. निष्कर्ष-

इस प्रकार, समकालीन कविता का सरोकार केवल मानव तक ही सीमित नहीं है, उसकी परिधि में समग्र प्रकृति समाहित है। मानव इन तत्वों के संतुलन में विकृति पैदा कर रहा है। अत: समकालीन कविता का सरोकार पर्यावरण विकृति और उसके परिणाम भी है। यही समकालीन हिंदी कविता को हिंदी काव्य-धारा में अपनी अलग से पहचान बनाती दिखलाई पड़ती है।

संदर्भ :

1. कुमार अंबुज, 'अमीरी रेखा' (काव्य संग्रह), पहला संस्करण-2011, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 117
2. मंडलोई लीलाधर, 'मनवा बेपरवाह' (काव्य-संग्रह), पहला संस्करण-2011, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृ. 85
3. वही, पृ. 28
4. श्रीवास्तव एकांत, 'मिट्टी से कहूंगा धन्यवाद' (कविता संग्रह), प्रथम संस्करण-2000, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 87
5. मंडलोईलीलाधर, 'काला पानी', प्रथम संस्करण- 2006, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 160
6. श्रीवास्तव एकांत, 'नागकेसर का देश है यह' (कविता संग्रह), प्रथम संस्करण-2000, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 22-24
7. शुक्ल श्रीप्रकाश, 'रेत में आकृतियां' (कविता संग्रह), पहला संस्करण-2012, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 96
8. वही, पृ. 93
9. गंगोपाध्याय सुनिल, तिवारी विश्वनाथप्रसाद, कृष्णमूर्ति अग्रहार (संपादक मंडल), 'समकालीन भारतीय साहित्य', अंक-156, जुलाई-अगस्त-2011, पृ. 51
10. वही, पृ. 51
11. ज्ञानेन्द्रपति, 'गंगातट' (काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-1999, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 20
12. वही, पृ. 20
13. वही, पृ. 20
14. वही, पृ. 20
15. पुतुल निर्मला, 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' (कविता संग्रह), तीसरा संस्करण-2012, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 31
16. कमल अरूण, 'अपनी केवल धार' (कविता संग्रह), संस्करण-2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 63-64
17. श्रीवास्तव एकांत, 'मिट्टी से कहूंगा धन्यवाद' (काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण-2000, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 85-86

डॉ. विभा कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
कल्याणी विश्वविद्यालय
कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल, भारत
मोबाईल-9903791335
ई-मेल- bivakumarirbc@gmail.com